THE ECONOMIC TIMES

Date:23-11-23

BRICS a balance, de-escalation 101

ET Editorials

The BRICS meeting on Tuesday, including members of the enlarged group, worked to develop a balanced, focused and clear position on the situation arising from the Israel-Hamas war. The joint statement calls on Israel and Hamas to de-escalate, release hostages, and ensure civilians are not harmed. Given the divergence of views among the core members, and considering the new entrants - Saudi Arabia, Egypt and the UAE - the focus is on the current level of violence in Gaza and the need to ensure it does not spread into the region.

This meet should come as a wake-up call of sorts for India. While New Delhi once again has sought to inject a sense of balance, there is clearly a bigger pull to present the forum as an alternative to the western-dominated G7. Even as the joint statement speaks out against acts of violence against Israeli and Palestinian civilians, there is a privileging of narrative that focuses on the plight of the Palestinian population in Gaza. Russia and, to a lesser extent, China targeted the US and its policy, particularly in relation to Israel. The failure of the group to collectively call out Hamas for its terror activities is a concern.

India has been steadfast - condemning Hamas' terror attack while acknowledging Israel's right to a (proportional) response, the need to provide humanitarian support. It has advocated the two-state political solution. New Delhi needs to step up, use its relations in the region and with the US and European countries to push Israel and Palestine towards a political solution. Such an effort will ensure that its role as balancer in BRICS is safeguarded and augmented. More so, as the BRICS chair passes next to Russia, and neither war in Europe or the Levant seems to be coming to a close.

THE HINDU

Date:23-11-23

Unheeded advice

The time has come for the Governor's role to be reconsidered

Editorial

Ongoing proceedings before the Supreme Court raise concerns about the conduct of some Governors. The key issue that has forced State governments to approach the court for redress is the perverse manner in which incumbents in Raj Bhavan have used the absence of a time-frame for granting assent to Bills to harass and frustrate elected regimes. When the court raised the question, "What was the Governor doing for three years?" with respect to the Tamil Nadu Governor, R.N. Ravi, it was underscoring the fact that he disposed of pending Bills only after the court's observations about the delay in an earlier hearing. The Governor's reluctance to act until an aggrieved government approached the court seems deliberate. The hearing was marked by some questions and answers about the implications of the Governor's action in withholding his assent to 10 Bills, and the response of the State Assembly in passing the Bills for a second time. Preliminary observations by the court suggest that the scheme of Article 200 of the Constitution, which deals with the presentation of Bills passed by the legislature to the Governor for assent, will come under a good deal of scrutiny in this matter. With the court noting that the Governor cannot refuse assent to the re-enacted Bills, the present legislative impasse can be given a quick resolution if Mr. Ravi acts on the observation. However, the matter should not end there.

The larger issue requires a clear enunciation of the law. The tenor of Constituent Assembly debates indicates that it intended to make the power of granting or withholding assent to Bills, or even returning them for reconsideration, exercisable solely on the advice of the Council of Ministers. However, in practice, many Governors have acted on their own, especially in reserving Bills for the President's consideration. The Supreme Court must now come up with an authoritative decision so that uncooperative Governors do not use such grey areas to their advantage. It must also be clarified whether 'withholding assent' is a final act of rejection of a Bill or it needs a follow-up action in the form of returning the Bill with a message for reconsideration by the House, as stated in the first proviso to Article 200. The proviso bars Governors from withholding assent to any Bill they had returned for reconsideration and has been adopted again by the legislature. The issue has also highlighted constitutional ambiguities on the role of Governors. The 'aid and advice' clause that is at the core of parliamentary democracy is somewhat undermined by clauses that allow Governors to give themselves discretion they were never meant to have. Such provisions need wholesome reconsideration.

दैनिक भास्कर

Date:23-11-23

गरीबी उन्मूलन के असली उपाय अपनाने होंगे

संपादकीय

हिंदी पट्टी के एक राज्य बिहार में प्रति व्यक्ति आय, केरल के मुकाबले बेहद कम है। इस राज्य में कल- कारखाने केरल के मुकाबले कम हैं, जबकि आबादी डेढ़ गुनी से ज्यादा। सजा की दर जहां इस गरीब राज्य में मात्र 11% है, वहीं केरल में 89% । यानी आम जनता का कानून-व्यवस्था में भरोसा इसलिए कम है कि सही अपराधी पकड़े नहीं जाते या लचर

और भ्रष्ट सिस्टम के सहारे छूट जाते हैं। सरकारों की प्राथमिकता फैक्ट्री लगा कर उन्हें काम देने की होनी चाहिए। लेकिन रोजगार देने की जगह राज्य मजदूर पैदा करने की फैक्ट्री बन गया और ये असहाय युवा दो-जून की रोटी के लिए अन्य संपन्न राज्यों में पलायन करने लगे। आरबीआई की ताजा हैंडबुक के अनुसार जहां दक्षिण भारतीय राज्यों में मजदूरों को 850 रुपए प्रति दिन मजदूरी मिलती है, वहीं हिंदी पट्टी के इस राज्य में इसकी एक-तिहाई। जाहिर है एक गरीब युवा रोजी-रोटी के लिए अपना राज्य छोड़ कर तीन गुना कमाने संपन्न राज्यों में जाता है। देश में सबसे ज्यादा आबादी घनत्व वाले इस गरीब राज्य में आज भी आबादी वृद्धि दर सर्वाधिक है। इन सारे आंकड़ों को देखें तो एक पैटर्न नजर आएगा। जरूरत है गरीबी उन्मूलन के असली उपाय- जनसंख्या नियंत्रण के प्रयास, कानून व्यवस्था बेहतर कर कारखाने लगाने का वातावरण तैयार करने की।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:23-11-23

प्रदूषण से घुट रहा भारत के शहरों का दम

अमित कपूर विवेक देवरॉय और जेसिका दुग्गल, (कपूर इंस्टीट्यूट फॉर कम्पेटिटिव इंडिया में अध्यक्ष और यूएसएटीएमसी, स्टैनफर्ड यूनिवर्सिटी में व्याख्याता हैं। देवरॉय भारत के प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के अध्यक्ष हैं। लेख में जेसिका दुग्गल का भी योगदान)

कोरोना महामारी के दौरान की वे निराशाजनक यादें पिछले कुछ हफ्तों में ताजा हो गईं जब घर से बाहर निकलने वाले हर व्यक्ति के मुंह पर एन95 मास्क दिखने लगा। राष्ट्रीय राजधानी के ऊपर धुएं के बादल मंडरा रहे थे। हाल के वर्षों में भारत विशेषकर देश के उत्तर और उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में सर्दी का सीजन दुर्भाग्य से अनचाहा वायु प्रदूषण आने के साथ शुरू होता है। एक दशक पहले सुबह की शुरुआत ताजा-ताजा ठंडी हवा के झोंकों के नाक में सुरसुरी करने के साथ होती थी। अफसोसनाक बात है कि अब दिल्ली और इसके आसपास के शहरों में वाहनों की बढ़ती संख्या के साथ-साथ पराली जलाने, औद्योगिक गतिविधियां बढ़ने, पटाखे छोड़ जाने और धुआंधार इमारतों के निर्माण के कारण वायु प्रदूषण बहुत तेजी से बढ़ रहा है। आंकड़ों से पता चलता है कि पिछले कुछ सप्ताह में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र यानी एनसीआर में वायु प्रदूषण लगातार गंभीर या अति गंभीर श्रेणी में दर्ज किया गया है।

विश्व वायु गुणवत्ता रिपोर्ट के अनुसार प्रदूषित हवा प्रति वर्ष 60 लाख लोगों की जान ले सकती है। लगातार वायु प्रदूषण के माहौल में रहने से कैंसर, फेफड़े व दिल की बीमारी हो सकती है। विशेषकर बच्चों को रोग प्रतिरोधक क्षमता घटने जैसी घातक समस्याएं घेर लेती हैं। इसके अलावा, प्रदूषण जनित बीमारियों के कारण युवाओं की शिक्षा पर तो विपरीत असर पड़ता ही है, कम आय वाले लोगों का काम बुरी तरह प्रभावित होता है। लगातार ऐसा होने का सीधा प्रभाव आमदनी पर पड़ता है, जिससे गरीबी बढ़ती है एवं व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर उत्पादकता घटती है। द

यूनाइटेड नेशंस एनवायरनमेंट प्रोग्राम (UNEP) ने 'वायु गुणवत्ता पर कार्रवाई' पर 2016 की अपनी रिपोर्ट को अद्यतन कर 2021 में जारी किया, जिसमें इस पर प्रकाश डाला गया है कि किस प्रकार विभिन्न देश अपनी वायु गुणवत्ता में सुधार ला सकते हैं।

इस रिपोर्ट में दावा किया गया है कि दुनिया की 92 प्रतिशत आबादी पीएम2.5 सांद्रता के संपर्क में है। यह विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की अनिवार्य सीमा से बहुत ऊपर है। यही नहीं, इसके अभी 2030 तक 50 फीसदी और बढ़ने की आशंका है। विश्व बैंक के अनुसार सबसे अधिक प्रदूषण वाले स्थानों में दक्षिण और पूर्वी एशिया, पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका चिह्नित किए गए हैं। इन क्षेत्रों में पीएम2.5 का स्तर उत्तरी अमेरिका के मुकाबले आठ से नौ गुना अधिक पाया गया है। वायु प्रदूषण से होने वाली मौतों में आधे से अधिक विशेषकर चीन और भारत में दर्ज की जाती हैं। यह स्थिति प्रभावित क्षेत्रों में वायु प्रदूषण कम करने के लिए ठोस प्रयास किए जाने की जरूरत को रेखांकित करती है।

इस समय हम शहरीकरण में सबसे तेज वृद्धि होती देख रहे हैं। यह विश्व स्वास्थ्य के लिए जटिल समस्या है। तकनीक के बढ़ते इस्तेमाल और जगह के विस्तार से विश्व स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार देखा गया था, लेकिन वायु प्रदूषण अकेला ही इस उपलब्धि में बट्टा लगा सकता है। शहरों के फैलाव के कारण कई तरह से वायु प्रदूषण में इजाफा हुआ है। शहरीकरण अपने साथ औद्योगीकरण तो लाता ही है, इसके साथ-साथ यातायात और ऊर्जा खपत भी बढ़ती है, जो वायु प्रदूषण का स्तर बढ़ाने में विशेष भूमिका निभाती है। शहरों में वायु प्रदूषण बढ़ने के प्रमुख कारणों में वाहनों से निकलने वाला धुआं, औद्योगिक इकाइयां, ऊर्जा संयंत्र और कूड़ा-करकट या फसल अवशेष का जलाया जाना आदि शामिल होते हैं। जैसे-जैसे शहरी क्षेत्र का प्रसार होता है, परिवहन साधनों में वृद्धि के साथ ऊर्जा की मांग भी बढ़ती है। इनसे निकलने वाले प्रदूषक तत्त्व वातावरण में घुलते हैं। परिवहन शहरों में वायु प्रदूषण बढ़ने का प्रमुख स्रोत होता है, क्योंकि वाहनों का धुआं वातावरण में पार्टिकुलेट मैटर, नाइट्रोजन ऑक्साइड और वाष्पशील कार्बनिक यौगिक को बढ़ाती है। औद्योगिक गतिविधियां हालात को और भी खराब कर देती हैं, क्योंकि इनसे सल्फर डाइऑक्साइड और भारी धातु के कण हवा में घुलते हैं।

इसके अतिरिक्त इमारतों के निर्माण की गतिविधियां शहरों को गर्म द्वीप में तब्दील कर रही हैं। क्योंकि घने इमारती या रिहायशी इलाकों के कारण हवा के बहाव की गति रुकती या धीमी पड़ जाती है और प्रदूषक तत्त्व वातावरण के निचले हिस्से में ही ठहर जाते हैं और इससे गर्मी बढ़ती है। हालांकि शहरीकरण को रोक देना प्रदूषण कम करने का कोई उपाय नहीं है, लेकिन शहरों का यह विस्तारीकरण इस प्रकार होना चाहिए कि इसमें रहने वालों की जिंदगी मुश्किल के बजाय आसान बने। उदाहरण के लिए, शहरी निकाय लोगों को किफायती और टिकाऊ परिवहन जैसी सार्वजनिक परिवहन सेवाएं अपनाने एवं साइकल से या पैदल चलने को प्रोत्साहित कर सकते हैं। सार्वजनिक परिवहन के आधारभूत ढांचे में पर्याप्त निवेश, सड़कों पर साइकिल लेन बनाने और पैदल चलने वालों के लिए पथ विकसित करने जैसे कदम बड़ी संख्या में निजी वाहनों को सड़कों पर उतरने से रोक सकते हैं। जब कम संख्या में निजी वाहन चलेंगे, तो निश्चित रूप से वायु प्रदूषण भी घटेगा।

दूसरे, उद्योगों और वाहनों के लिए समय-समय पर उत्सर्जन मानकों को अद्यतन करना और उन्हें लागू कराना भी प्रदूषण कम करने में महती भूमिका निभा सकता है। फैक्टरियों, ऊर्जा संयंत्रों और वाहनों में उत्सर्जन सीमा को सख्ती से लागू करने के लिए शहरी निकायों/सरकारों को पर्यावरणीय एजेंसियों के साथ हाथ मिलाना चाहिए। नियमों का पालन नहीं

करने वालों पर सख्ती बरतने के लिए नियमित रूप से निरीक्षण करना और जुर्माना लगाना जैसे उपाय किए जा सकते हैं।

तीसरे, शहरी योजना में हरित क्षेत्र को शामिल करना भी वायु प्रदूषण के खिलाफ जंग में प्रभावी भूमिका निभाता है। शहरी निकाय रिहायशी और औद्योगिक इलाकों में ग्रीन बेल्ट, पार्क और शहरी जंगल क्षेत्र के प्रसार को प्रोत्साहित कर वायु प्रदूषण को काबू कर सकते हैं। वनस्पति प्राकृतिक छननी का काम करते हैं। ये प्रदूषक तत्त्वों को सोखकर वायु स्वच्छ करते हैं। इसलिए अधिक से अधिक पौधरोपण को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त सुनियोजित तरीके से शहरी योजना को लागू किया जाना चाहिए, जिसमें मिक्स लैंड यूज यानी मिश्रित भूमि उपयोग को प्राथमिकता दी जाए और सघन रिहायश को कम से कम रखा जाए। इससे वायु बहने की गति बढ़ेगी और प्रदूषण छंटेगा।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात, नवीनीकरण ऊर्जा को अपनाए जाने से भी वातावरण में प्रदूषक तत्त्वों और ग्रीन हाउस गैसों को कम करने में खासी मदद मिल सकती है। रिहायशी और औद्योगिक इलाकों में सरकार सौर, वायु समेत अन्य स्वच्छ ऊर्जा के विकल्पों को अपनाने पर लोगों को प्रोत्साहन राशि दे सकती है। इससे न केवल वायु प्रदूषण में कमी आएगी, बल्कि लोगों का रुझान टिकाऊ स्वच्छ ऊर्जा की तरफ बढ़ेगा। जिस प्रकार हमारे समाज में तेजी से शहरीकरण बढ़ रहा है, वायु गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान कर उन्हें दूर करना उतना ही जरूरी हो गया है।

शहरीकरण और प्रदूषण में सीधा नाता है, लेकिन बचाव के ठोस सहयोगात्मक उपाय लागू कर शहरी वातावरण को स्वस्थ बनाया जा सकता है। शहरों में पैदल पथ, साइकल लेन, स्वच्छ ऊर्जा इस्तेमाल जैसी टिकाऊ प्रथाएं एवं तकनीकी नवाचार अपनाने तथा सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देकर शहरी लोगों के लिए स्वच्छ और स्वस्थ भविष्य का रास्ता तैयार किया जा सकता है।

जनसत्ता

Date:23-11-23

शांति की राह

संपादकीय

इजराइल और हमास के बीच जारी युद्ध में प्राथमिक जरूरत इस बात की है कि किसी आधार पर सबसे पहले हमले रोकें जाएं, क्योंकि इससे अब वहां मानवता के सामने संकट गहराने की स्थिति खड़ी हो चुकी है। निश्चित तौर पर आतंकवाद को करारा जवाब दिया जाना चाहिए, लेकिन अगर इस क्रम में व्यापक पैमाने पर आम लोग मारे जाने लगे और आतंकवादियों को बहुत ज्यादा फर्क नहीं पड़ रहा हो तो ऐसे हमले हमेशा ही सवालों के कठघरे में होंगे। इसलिए ब्रिक्स की बैठक में भारत की यह मांग काफी अहम है कि आतंकवाद से कोई समझौता नहीं होना चाहिए, लेकिन फिलिस्तीन की चिंता का स्थायी समाधान हो। यह छिपा नहीं है कि हमास के हमले के बाद इजराइल की प्रतिक्रिया से शुरू हुए युद्ध ने जो शक्ल अख्तियार कर ली है, उसका शिकार केवल आम लोग हो रहे हैं, भारी तादाद में बच्चे तक मारे जा रहे हैं।

दूसरी ओर, युद्ध में बंधक बनाए गए लोगों का मुद्दा एक अलग मानवीय सवाल खड़ा कर रहा है कि दो सशस्त्र पक्षों के टकराव में साधारण लोगों को अपना कवच क्यों बनाया जा रहा है।

दरअसल, पिछले कुछ दिनों से हमास और इजराइल के बीच युद्ध के दौरान बंधक बनाए गए लोगों की रिहाई और इस इलाके में युद्ध रोकने के लिए आवाजें उठने लगी हैं शायद यही वजह है कि बुधवार को इजराइल की कैबिनेट ने एक अस्थायी युद्ध विराम को मंजूरी दे दी है। हालांकि इसकी मुख्य वजह उन पचास बंधकों की रिहाई है, जिनकी सुरक्षित वापसी के लिए इजराइल ने हमास के साथ एक समझौता किया है। इसके तहत चार दिनों के युद्ध विराम के दौरान बंधक रिहा किए जाएंगे और मानवीय सहायता की अनुमति होगी। साथ ही हर अतिरिक्त दस बंधकों की रिहाई पर युद्ध विराम को एक और दिन के लिए बढ़ाया जाएगा। यों यह विचित्र है कि एक और बंधकों को आजाद कराने के लिए युद्ध को अस्थायी तौर पर रोका जाएगा, मगर दूसरी ओर गाजा पट्टी में बड़े पैमाने पर जारी इजराइली गोलाबारी, मिसाइल हमलों में अगर आम लोगों की जान जा रही है तो उसे रोकना किसी की प्राथमिकता में नहीं है। हालत यह है कि युद्ध के दौरान सुरक्षित पनाहगाह के तौर पर घोषित अस्पतालों को भी हमलों का निशाना बनाया जा रहा है और साधारण नागरिकों की जान जा रही है।

जाहिर है, यह अंतरराष्ट्रीय कानूनों का स्पष्ट उल्लंघन है, मगर इस पर सवाल उठने के बावजूद इजराइल के हमले जारी हैं और इसमें वैसे आम लोग मारे जा रहे हैं, जो किसी भी रूप में युद्ध के लिए जिम्मेदार नहीं हैं। ऐसे में सबसे पहली जरूरत हमलों पर रोक लगाने की होनी चाहिए। अस्थायी युद्ध विराम जैसे तात्कालिक उपायों के मुकाबले स्थायी समाधान की राह निकालने के लिए सभी स्तर पर पहल की जानी चाहिए। इस लिहाज से देखें तो भारत की मांग की अपनी प्रासंगिकता है। भारत पहले भी आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई का हमेशा समर्थन करता रहा है। इसलिए ब्रिक्स की बैठक में भी भारत का यही स्पष्ट रुख है कि आतंकवाद से कोई समझौता नहीं होना चाहिए। मगर इस क्रम में फिलिस्तीनी नागरिकों के सामने जिस स्तर का संकट खड़ा हो गया है, उसकी चिंता भी वाजिब है। एक स्थायी, ठोस और नीतिगत हल ही मौजूदा समस्या को खत्म कर सकता है। फिलिस्तीन की चिंताओं को दूर करने का आह्वान करते हुए भारत ने जो 'दो राज्य' नीति के तहत समाधान की बात कही है, वह इसी सरोकार से जुड़ा है। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि युद्ध के बजाय शांति और संवाद ही किसी समस्या के समाधान का रास्ता है।

Date:23-11-23

होड़ का हासिल

संपादकीय

इससे बड़ी विडंबना क्या होगी कि माता-पिता यह चाहते हैं कि उनका बच्चा पढ़ाई-लिखाई पूरी कर जिंदगी में ऊंचा मुकाम हासिल करे, लेकिन इसके लिए जो दबाव की स्थितियां पैदा की जाती हैं, उसमें कई बच्चों की जिंदगी तक छिन जाती है। पिछले कुछ सालों से यह हकीकत लगातार सामने आ रही है कि इंजीनियरिंग या चिकित्सा की पढ़ाई करने के लिए बच्चों का दाखिला राजस्थान के कोटा जैसे कुछ खास शहरों में कराया जाता है, मगर वहां उपजे दबाव को नहीं सह पाने की वजह से कई बच्चे आत्महत्या तक कर ले रहे हैं। ऐसी घटनाओं में इजाफे ने हर तरफ चिंता पैदा की है, मगर आज

भी बहुत सारे अभिभावक यह समझ पाने में नाकाम हैं कि अपना सपना पूरा करने निकले बच्चे आखिर क्यों मौत को चुन लेते हैं। इस मसले पर अब सुप्रीम कोर्ट ने भी चिंता जताई है कि वक्त के साथ ज्यादा सख्त होते प्रतिस्पर्धा के मानदंड के समांतर अभिभावकों की ओर से पैदा किए गए अत्यधिक दबाव को कई बच्चे नहीं झेल पाते हैं और आत्महत्या का रास्ता अख्तियार कर लेते हैं।

अदालत की टिप्पणी एक याचिका पर सुनवाई के दौरान सामने आई, जिसमें तेजी से बढ़ते कोचिंग संस्थानों के विनियमन का अनुरोध किया गया है और विद्यार्थियों की आत्महत्या के आंकड़ों का हवाला दिया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि मेडिकल या इंजीनियरिंग की शिक्षा के लिए उच्च शिक्षण संस्थानों में दाखिले के लिए जो पाठ्यक्रम तैयार किया गया है, उसकी जटिलता के मद्देनजर बच्चों को सामान्य से ज्यादा पढ़ाई करने की जरूरत पड़ती है। इसके लिए उनके अभिभावक वैसे कोचिंग संस्थानों में बच्चों का दाखिला कराते हैं, जिनके बारे में आम धारणा होती है कि वहां से पढ़ाई करने वाले विद्यार्थी आसानी से परीक्षा पास कर जाते हैं। मगर इसके बरक्स हाल के वर्षों में यह हकीकत भी सामने आई है कि इस क्षेत्र में बढ़ती भीड़ की वजह से कड़ी प्रतिस्पर्धा खड़ी हुई है, पैमाने ज्यादा सख्त हुए हैं। कोचिंग संस्थान अपनी छवि चमकाने की मंशा से विद्यार्थियों पर परीक्षा में खुद को सबसे बेहतर साबित करने के लिए जरूरत से ज्यादा दबाव डालते हैं। इसी दबाव से उपजे तनाव को कई बार कुछ बच्चे नहीं झेल पाते हैं और जिंदगी से हार जाते हैं।

हालांकि कोचिंग संस्थानों की हकीकत किसी से छिपी नहीं है और आए दिन वहां से बच्चों की आत्महत्या की घटनाएं सामने आती रहती हैं। इसके बावजूद ऐसे तमाम अभिभावक हैं, जो अपने बच्चों को चिकित्सक या इंजीनियर बनाने के लिए यहां पढ़ाई करने भेजते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि जिन बच्चों की रुचि किसी अन्य विषय में पढ़ाई करने की होती है, उन्हें भी उनके अभिभावक मेडिकल या इंजीनियरिंग की तैयारी करने भेज देते हैं। इस होड़ में शामिल अभिभावकों की ओर से उपजे दबाव और तनाव का सामना बच्चों को करना पड़ता है। कोचिंग संस्थानों की अव्यवस्था से लेकर उनके पढ़ाई के स्वरूप निश्चित रूप से कटघरे में हैं और उन्हें जिम्मेदारी से मुक्त नहीं किया जा सकता। मगर अपनी महत्त्वाकांक्षा का बोझ बच्चों से पूरा कराने की होड़ में शामिल अभिभावकों को क्या यह सोचने की जरूरत नहीं है कि इस होड़ का हासिल क्या है? किसी भी समस्या का हल निकालना तभी संभव हो पाता है, जब उसके मुख्य कारणों की पहचान कर ली जाती है। कोटा या कहीं भी पढ़ाई के क्रम में उपजे तनाव का बोझ अगर बच्चों की जिंदगी पर ही भारी पड़ रहा है तो अभिभावकों को यह सोचने की जरूरत है कि आखिर उनका चुनाव क्या है- बच्चों की जिंदगी या फिर ऐसी पढ़ाई, जो उन्हें जानलेवा तनाव के संजाल में झोंक दे!

पहाड़ों में विनाश की परियोजनाएं

रोहित कौशिक

हाल ही में उत्तरकाशी में निर्माणाधीन सुरंग के क्षतिग्रस्त होने और उसमें मजदूरों के फंसने की घटना ने एक बार फिर पहाड़ों की अंधाधुंध विकास परियोजनाओं पर सवाल खड़े कर दिए हैं। यह सही है कि पहाड़ों के लिए विकास परियोजनाएं जरूरी हैं, लेकिन वे पहाड़ों के विनाश का कारण बनने लगें तो इस पर पुनर्विचार की जरूरत है। पहाड़ी इलाकों में लगातार भूस्खलन की घटनाएं बढ़ती जा रही हैं। जिस गति से पहाड़ों पर निर्माण कार्य हो रहा है, उससे भूस्खलन की घटनाएं और बढ़ने की उम्मीद है। कुछ समय पहले जोशीमठ में कई मकान धंस गए थे और अनेक मकानों में दरार आ गई थी। उस समय स्थानीय लोगों ने जोशीमठ की पहाड़ी के नीचे सुरंग से होकर गुजरने वाली एनटीपीसी की निर्माणाधीन तपोवन विष्णुगाड जलविद्युत परियोजना को घटना के लिए जिम्मेदार माना था। वैज्ञानिकों का मानना है कि पहाड़ों के कई शहर भूकम्प के अत्यधिक जोखिम वाले क्षेत्र में बसे हैं इसलिए ऐसी जगहों पर होने बाली थोड़ी-सी भी हलचल भारी तबाही मचा सकती है दुर्भाग्यपूर्ण है कि अनियंत्रित विकास ने पहाड़ों के कई शहरों को खतरे में डाल दिया है।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हम पहाड़ों की विभिन्न आपदाओं से सबक नहीं ले पाए और उनके मिजाज को समझे बिना विकास परियोजनाओं को हरी झंडी देते चले गए। यही कारण है कि हमें लगातार इस तरह के संकटों का सामना करना पड़ रहा है। शुरू से ही पहाड़ों पर अत्यधिक जल विद्युत परियोजनाओं का विरोध होता रहा है अनेक वैज्ञानिकों और पर्यावरणविदों का मानना है कि पहाड़ों पर ये जल विद्युत परियोजनाएं भविष्य में और बड़ी तबाही मचा सकती हैं। हर क्षेत्र का अपना अलग पर्यावरण होता है हम पहाड़ के पर्यावरण की तुलना मैदानी क्षेत्रों के पर्यावरण से नहीं कर सकते। अगर पहाड़ के पर्यावरण को समझे बिना विकास परियोजनाओं को आगे बढ़ाएंगे तो ऐसी आपदाओं को ही निमंत्रण देंगे। गौरतलब है कि पहाड़ों पर बनने वाले बांधों ने ग्लेशियरों को भी कमजोर किया है।

आज विकास का जो हवामहल बनाया जा रहा है, यह किसी न किसी रूप से आम आदमी की कब्र खोदने का काम कर रहा है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हम बड़े शर्मनाक तरीके से इस विकास पर अपनी पीठ थपथपाते रहते हैं। क्या हम विकास का ऐसा ढांचा नहीं बना सकते, जिससे पहाड़ के निवासियों को स्थायी रूप से फायदा हो? आज विकास के जो तौर-तरीके अपनाए जा रहे हैं, उनमें गरीब लोगों को अस्थायी फायदा होता है इसीलिए वे ताउम्र गरीब बने रहते हैं और सत्ताएं तथा पूंजीपति लोग विकास का स्वप्न दिखाकर उन्हें लगातार ठगते रहते हैं। इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है कि इस व्यवस्था से त्रस्त आम आदमी और पर्यावरण संरक्षण के पक्ष में खड़े होने वाले लोगों को भी सत्ताएं संदिग्ध बताकर गरीबों का दुश्मन घोषित करने में जुट जाती हैं। दरअसल, बड़ी विकास परियोजनाओं की विसंगतियों के दर्द को आम आदमी ही महसूस कर सकते हैं।

इन बड़ी योजनाओं से बड़ी संख्या में विस्थापन भी होता है, जिसकी गरीब लोगों पर दोहरी मार पड़ती है। पहली मार तो व्यवस्था की होती है सवाल है कि इस व्यवस्था में उजड़े हुए लोगों की मानसिक अवस्था तक पहुंचने वाले कितने अधिकारी और कर्मचारी हैं। जिन अधिकारियों और कर्मचारियों को अपना कर्तव्य निभाने में भी जोर पड़ता है, वे अपनी सरकारी नौकरी की मानसिकता से ऊपर उठकर अतिरिक्त कुछ नहीं कर पाते। विस्थापितों पर व्यवस्था की मार से उपजी दूसरी मार मानसिक तनाव की पड़ती है। इसलिए पहाड़ के लोगों के भविष्य की ठोस और सार्थक कार्य योजना बनाए बिना विकास की बात करना बेमानी है।

उत्तराखंड तथा देश के अन्य भागों में विभिन्न बांधों से जुड़ी परियोजनाएं सिर्फ विस्थापितों के राहत एवं पुनर्वास कार्यों को लेकर सवालों के घेरे में नहीं रहतीं, बल्कि इनमें शुरू से ही पर्यावरण से जुड़े अनेक नियमों के पालन में कोताही बरती जाती है। सवाल है कि विकास के ढांचे में ऐसी परियोजनाओं से प्रभावित परिवारों के बारे में क्यों नहीं सोचा जाता ? सरकार प्रभावित लोगों के बारे में बड़ी-बड़ी बातें तो करती हैं, लेकिन उन्हें दर-दर की ठोकरें खाने के लिए छोड़ दिया जाता है। क्या विकास के इस माडल में गरीबों के लिए कोई जगह नहीं है? इस प्रगतिशील दौर में भी विभिन्न जगहों पर बांध से प्रभावित लोग विस्थापन की मार झेल ही रहे हैं।

यह विडंबना ही है कि देश में पिछले पचास वर्षों में बड़ी सिंचाई परियोजनाओं पर करोड़ों रुपए खर्च किए गए हैं, लेकिन सूखे और बाढ़ से प्रभावित जमीन का क्षेत्रफल लगातार बढ़ता जा रहा है। दरअसल, अब समय आ गया है कि पिछले पचास वर्षों में बने अनेक बांधों से मिल रही सुविधाओं की वास्तविक समीक्षा की जाए। पिछले कुछ वर्षों से बड़े बांधों की उपयोगिता पर एक नई बहस चल पड़ी है। अधिकतर विकसित देशों ने बड़े बांधों को हानिकारक मानते हुए इनका निर्माण बंद कर दिया है बांधों के विश्व आयोग की भारत से संबंधित एक रपट में बताया गया है कि बड़ी सिंचाई परियोजनाओं से अधिक लाभ नहीं होता, जबकि इसके दुष्परिणाम अधिक होते हैं। इस रपट में बताया गया है कि भारत में बड़े बांधों के कारण विस्थापित करोड़ों लोगों में 62 फीसद अनुसूचित जाति और जनजाति से संबंधित हैं। बड़े बांधों के कारण जहां एक ओर लगभग कई लाख हेक्टेयर जंगलों का विनाश हुआ है, दूसरी ओर ऐसी परियोजनाओं से अनेक तरह की विषमताएं पैदा हुई हैं और इसका लाभ अधिकतर बड़े किसानों और शहरी लोगों को मिला है।

आज निश्चित रूप से विज्ञान निरंतर प्रगति पर है, लेकिन वह प्रकृति के सामने बौना ही है। अगर इस दौर के बुद्धिजीवी प्रकृति के साथ विज्ञान की प्रतियोगिता कराएंगे, तो किसी न किसी रूप में वे तबाही को ही जन्म देंगे। विज्ञान और प्रगतिवादी सोच का उपयोग मानव कल्याण के लिए होना चाहिए, न कि मानव विनाश के लिए। पूरी दुनिया में बड़े बांधों के माध्यम से हुई तबाही किसी से छिपी नहीं है। अक्सर हमारे कुछ वैज्ञानिक और बुद्धिजीवी विभिन्न तर्क देकर यह सिद्ध करने की कोशिश करते रहते हैं कि बड़े बांध एक निश्चित अवधि तक प्रकृति की मार झेलने में सक्षम हैं मगर यह अनेक बार सिद्ध हो चुका है कि विभिन्न भविष्यवाणियों के बावजूद विश्व के वैज्ञानिक प्राकृतिक आपदाओं से लड़ने में असमर्थ हैं। दरअसल, इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि वैज्ञानिकों द्वारा घोषित इस निश्चित समयावधि में भी बड़े बांध प्रकृति की मार झेल ही लेंगे।

भारत जैसे विकासशील देश में पीने के पानी, सिंचाई और ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए एक ऐसी व्यवस्था की जरूरत है, जिससे कि संसाधनों का समुचित उपयोग और ठीक ढंग से पर्यावरण संरक्षण हो सके। इस व्यवस्था में वर्षा जल के संरक्षण, वैकल्पिक स्रोतों से ऊर्जा प्राप्त करने तथा जैविक खेती को प्रोत्साहन दिया जा सकता है। यह सर्वविदित है कि बड़े बांधों से जहां एक और अनेक बीमारियां फैलती हैं, वहीं दूसरी ओर बांधों में मिट्टी भर जाने से इनकी अवधि भी कम हो जाती है। हमें यह ध्यान रखना होगा कि पहाड़ का अपना अलग पर्यावरण होता है। इस पर्यावरण की रक्षा करना आम नागरिकों का कर्तव्य तो है ही, सरकार का कर्तव्य भी है। दुर्भाग्यपूर्ण है कि विभिन्न सरकारें विकास की परियोजनाओं में पहाड़ के पर्यावरण का खयाल नहीं रखती हैं। अब हमें इन आपदाओं से सबक लेना चाहिए।

राष्ट्रीय सहारा

Date:23-11-23

बढ़ सकती है चुनौती

डॉ. एन.के. सोमानी

मालदीव के राष्ट्रपति मोहम्मद मुइजू ने अपने देश के मतदाताओं से किए वादे को पूरा करने की दिशा में कदम उठाने शुरू कर दिए हैं। पिछले दिनों राष्ट्रपति चुनाव में चीन समर्थक डॉ. मुइजू ने अपने चुनावी कैंपेन में अपने नागरिकों से देश की संप्रभुता के लिए भारतीय सैनिकों को वापस भेजने का वादा किया था। चुनाव परिणामों के तत्काल बाद प्रतिक्रिया देते हुए मुइजू ने कहा था कि वे अपने कार्यकाल के पहले ही दिन से भारतीय सैनिकों को वापिस भारत भेजने की प्रक्रिया शुरू कर देंगे। 17 नवम्बर को पद ग्रहण करने के बाद उन्होंने भारतीय सैनिकों की वापसी के प्रयास शुरू कर दिए हैं। मुइजू के शपथ ग्रहण समारोह भाग लेने के लिए मालदीव गए भारत के केंद्रीय मंत्री किरेन रिजिजू से औपचारिक मुलाकत के दौरान भी भारतीय सैनिकों की वापसी का मुद्दा उठा। चीन समर्थक मुइजू ने पूर्व राष्ट्रपति इब्राहिम मोहम्मद सोलिह के शासनकाल में भारत और मालदीव के बीच हुए एक सौ से अधिक समझौतों की समीक्षा करने की बात भी कही है। हालांकि, भारत के पीएम नरेन्द्र मोदी ने उन्हें जीत की बधाई देते हुए कहा था कि भारत मालदीव के साथ अपने द्विपक्षीय संबंधों को और अधिक मजबूत बनाएगा।

'इंडिया आउट' अभियान के सहारे चुनावी कैंपेन चलाने वाले डॉ. मुइजू ने अपनी रैलियों में राष्ट्रपति इब्राहिम मोहम्मद सोलिह को भारत समर्थक बताते हुए उन पर हमले करते थे। मुइजू का कहना था कि उनकी सरकार मालदीव की संप्रभुता से समझौता कर किसी देश से करीबी नहीं बढ़ाएगी। दूसरी ओर सोलिह मुइजू पर चीन समर्थक होने का आरोप लगा रहे थे। कुल मिलाकर कहा जाए तो इस बार मालदीव का राष्ट्रपति चुनाव भारत और चीन के इर्द-गिर्द घूम रहा था। परिणाम चीन समर्थक मुइजू के पक्ष में रहा। मुइजू की जीत के बाद भारत के भीतर सवाल लगातार उठ रहा था कि मुहजू राष्ट्रीय हितों को प्रथामिकता देते हुए भारत और चीन के बीच संतुलन बनाकर आगे बढ़ेगे या मतदाताओं के फैसले का सम्मान करते हुए चीन के पाले में खड़े होंगे। सैनिकों की वापसी के निर्णय से लगता है कि मुइजू दूसरे विकल्प पर आगे बढ़ेंगे। दरअसल, पिछले एक डेढ़ दशक से मालदीव हिन्द महासागर की प्रमुख शक्तियों भारत और चीन के बीच भू-राजनीतिक खींचतान का केंद्र रहा है। साल 2013 में चीन समर्थक अब्दुल्ला यामीन के राष्ट्रपति बनने के बाद भारत मालदीव संबंधों में लगातार गिरावट आई। भारत के पारंपरिक शत्रु पाकिस्तान के साथ ऊर्जा के क्षेत्र में किया गया समझौता हो या सैन्य हेलिकॉप्टर को वापिस लौटाने का फरमान हो यामीन का हर एक फैसला भारत को असहज करने वाला था। भारत ने मालदीव को यह हेलिकॉप्टर राहत और बचाव कार्य के लिए दिए थे। यामीन ने न सिर्फ चीनी की कंपनियों को पूरी छूट दे दी थी बल्कि मालदीव में कार्यरत भारतीय कंपनियों को वर्क परमिट जारी करना बंद दिया था जिसकी वजह से वहां उन परियोजनाओं का काम बाधित हुआ जिनमें भारत की भागीदारी थी।

यामीन के बारे में तो यहां तक कहा जाता था कि वे अपने देश में भारत की किसी तरह की भागीदारी पंसद नहीं करते हैं। चीन के साथ मुक्त व्यापार समझौता (एफटीए) भी उनके कार्यकाल में किया गया था। हालांकि, 2018 में सत्ता पवितर्न के बाद राष्ट्रपति मोहम्मद सोलिह ने इसे लागू नहीं किया। हो सकता है, अब मुइज़ू इसे लागू करवाने की दिशा में बड़े। चुनावी कैंपेन में वे इसे लागू करने की बात कह भी चुके हैं। लेकिन 2018 के राष्ट्रपति चुनाव में भारत समर्थक इब्राहिम मोहम्मद सोलिह के सत्ता में आने के बाद भारत मालदीव संबंध फिर परवान चढ़ने लगे। सोलिह ने अपने कालखंड के दौरान 'इंडिया फर्स्ट' नीति को लागू करते हुए भारत के लिए निवेश और कनेक्टिविटी के द्वार खोल दिए । नवम्बर, 2018 में अपने शपथ ग्रहण समारोह में हिस्सा लेने के लिए मोहम्मद सोलिह ने भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को आमंत्रित कर भारत की 'नेवर फर्स्ट' नीति का समर्थन किया था । सोलिह दिसम्बर 2018 में अपने पहले विदेशी दौरे पर भारत आए अगस्त, 2022 में मोदी और सोलिह ने 50 करोड़ डॉलर की लागत से तैयार होने वाली मालदीव की सबसे बड़ी कनेक्टिविटी परियोजना की नींव रखी थी। इसके अलावा, आज भी मालदीव में पेयजल, अस्पताल, क्रिकेट स्टेडियम और सामुदायिक भवनों के निर्माण जैसी दर्जनों परियोजनाएं भारत की मदद से चल रही हैं। लेकिन अब सोलिह के सत्ता से रुखसत होने के बाद सवाल उठ रहा है कि सोलिह के कार्यकाल के दौरान बनी 'इंडिया फर्स्ट' नीति क्या समाप्त हो जाएगी जिसके संकेत मुइज़ू परिणाम के तत्काल बाद अपने बयान में दिए हैं। अगर ऐसा होता है, तो निस्संदेह हिन्द महासागर में भारत की पकड़ कमजोर हो सकती है।

मालदीव भले ही छोटा देश हो लेकिन रणनीतिक दृष्टि से भारत के लिए अहम है। 1988 में राजीव गांधी की सरकार ने सेना भेजकर तत्कालीन राष्ट्रपति अब्दुल गयूम की सरकार को बचाया था। दिसम्बर, 2014 में माले के सबसे बड़े ट्रीटमेंट प्लांट के जनरेटर में आग लग जाने से पीने के पानी का संकट उत्पन्न हो गया तो मालदीव ने भारत सरकार से गुहार लगाई। भारत ने 'ऑपरेशन नीर' चलाकर हजारों लीटर पानी के साथ आईएनएस सुकन्या और आईएनएस दीपक माले भेजा । भारतीय वायुसेना ने भी एयरक्रॉफ्ट के जरिए सैकड़ों टन पानी पहुंचाया।

सामरिक दृष्टि से मालदीव चीन के लिए भी काफी अहम है। चीन ने उसे अपनी ऋण कूटनीति में उलझा रखा है। वह अपने कुल ऋण का 60 फीसद से अधिक चीन से लेता है, जो उसके बजट का 10 प्रतिशत है। एक अनुमान के अनुसार चीन का मालदीव पर 14 अरब डॉलर का कर्ज है। 2016 में मालदीव ने चीन की एक कंपनी को अपना एक द्वीप 50 वर्षों के लिए लीज पर दे दिया था। चीन की योजना यहां सैन्य अड्डा निर्माण की भी है। इस नौ सैनिक अड्डे का उपयोग परमाणु पनडुब्बियों के संचालन के साथ-साथ भारत की जासूसी के लिए भी कर सकता है। संक्षेप में कहें तो चीन की समुद्री क्षेत्रों के प्रति जिस तरह से भूख बढ़ी है, उस स्थिति में चीन को काउंटर करने के लिए मालदीव में भारत की पैठ जरूरी है। यामिन के कार्यकाल के दौरान चीन ने यहां नौ सैनिक अड्डा बनाने की बात कही थी। यही वजह है कि अगर मालदीव में भारत के हित बाधित होते हैं, तो यह उसके लिए बुरा होगा तब चीन इस क्षेत्र का इकलौता खिलाड़ी बनकर उभर सकता है।